■ संपादकीय

विपक्ष का नया व्याकरण

कर्नाटक के मुख्यमंत्री एचडी कुमारस्वामी के शपथ ग्रहण के मौके पर तमाम गैर बीजेपी दलों के नेताओं की मौजूदगी बहुत कुछ कहती है। समारोह में कांग्रेस नेताओं के अलावा टीडीपी नेता चंद्रबाबू नायडू, समाजवादी पार्टी के अखिलेश यादव, बीएसपी सुप्रीमो मायावती, टीएमसी नेता और प. बंगाल की सीएम ममता बनर्जी, सीपीएम के महासचिव सीताराम येचुरी और अन्य कई नेता उपस्थित थे। बिहार विधानसभा चुनाव के बाद नीतीश कुमार के शपथ ग्रहण में भी कुछ-कुछ ऐसा ही नजारा दिखा था, लेकिन नीतीश ने बाद में पलटी मारकर अपोजिशन की एकता का सपना तोड़ दिया। बहरहाल, कर्नाटक में कांग्रेस की पहलकदमी से विपक्षी एकता फिर परवान चढ़ रही है। सच कहा जाए तो कर्नाटक विपक्षी एकता की प्रयोगशाला के रूप में उभरा है। कांग्रेस-जेडीएस सरकार का गठन एकजुटता के इस नए प्रयोग की शुरुआत है। विपक्षी नेताओं ने यहां आकर संदेश दिया है कि वे बीजेपी के खिलाफ मिलकर लड़ने के लिए तैयार हैं। वैसे तो वे अपने-अपने स्तर से पिछले एक-डेढ़ साल से एकता के लिए प्रयासरत हैं। यूपी में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी ने कड़वाहट भुलाकर हाथ मिला लिया और दो अहम लोकसभा सीटों पर हुए उपचुनावों में बीजेपी को करारी शिकस्त दी।

लेकिन अब ये सभी दल मानने लगे हैं कि विपक्षी एकता कांग्रेस की अगुआई में, या उसे तवज्जो देकर ही संभव है। खुद कांग्रेस भी कर्नाटक के अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि क्षेत्रीय दलों को पूरा वजन देकर ही बीजेपी को हराया जा सकता है। अपोजिशन पार्टियों की इस एकजुटता को अपना सियासी वजूद बचाए रखने की जद्दोजहद के रूप में भी देखा जा सकता है। लेकिन इसके पीछे एक विचार भी आकार ले रहा है। पहली बार देश में गैर-बीजेपीवाद की अवधारणा जोर पकड़ रही है। न सिर्फ राजनीतिक दायरे में बल्कि समाज में भी जनतांत्रिक और संवैधानिक मूल्य समस्याग्रस्त दिख रहे हैं।

तेलंगाना के सीएम के. चंद्रशेखर राव और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने बीजेपी विरोधी मोर्चा बनाने के संकेत दिए सो अलग। लेकिन अब ये सभी दल मानने लगे हैं कि विपक्षी एकता कांग्रेस की अगुआई में, या उसे तवज्जो देकर ही संभव है। खुद कांग्रेस भी कर्नाटक के अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि क्षेत्रीय दलों को पूरा वजन देकर ही बीजेपी को हराया जा सकता है। अपोजिशन पार्टियों की इस एकजुटता को अपना सियासी वजूद बचाए रखने की जद्दोजहद के रूप में भी देखा जा सकता है। लेकिन इसके पीछे एक विचार भी आकार ले रहा है। पहली बार देश में गैर-बीजेपीवाद की अवधारणा जोर पकड़ रही है। न सिर्फ राजनीतिक दायरे में बल्कि समाज में भी जनतांत्रिक और संवैधानिक मूल्य समस्याग्रस्त दिख रहे हैं। इसलिए 2019 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी के बरक्स तमाम गैर-बीजेपी दलों की साझेदारी अपने उद्देश्य की दृष्टि से सिर्फ सत्ता की बंदरबांट तक सीमित नहीं रह गई है। हालांकि यह काम इतना आसान भी नहीं है। विपक्षी खेमे में भारी अंतर्विरोध हैं। अलग-अलग राज्यों के समीकरण अलग-अलग हैं।

वायदों का वफा होना अभी बाकी

समय की तुलना मुट्ठी से फिसलती रेत से क्यों की गयी है, इसका अहसास फिलहाल नरेंद्र मोदी सरकार और भाजपा से बेहतर शायद किसी और को नहीं हो सकता। वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों में विजय रथ पर सवार होकर केंद्र की सत्ता पर आरूढ़ हुए मोदी और भाजपा को शायद अब अहसास हो रहा होगा कि चार साल कब गुजर गये, पता ही नहीं चला। तीन दशक बाद लोकसभा में अकेलेदम बहुमत हासिल करने वाली भाजपा का ग्राफ बेशक इन चार सालों में अभूतपूर्व रफ्तार से बढ़ा-चढ़ा है, लेकिन सत्ता की चौथी वर्षगांठ से सप्ताह भर पहले ही कर्नाटक में मिली मात से उसकी सीमाएं एक बार फिर उजागर हो गयी हैं। जरा वर्ष 1996 याद करिए।

राजकुमार सिंह

लोकसभा चुनाव में भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी थी। इसी नाते तत्कालीन राष्ट्रपति ने भाजपा संसदीय दल के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त करते हुए शपथ ग्रहण करवायी थी। पंडित जवाहर लाल नेहरू और इंदिरा गांधी सरीखे विराट व्यक्तित्व और दलीय सीमाओं के पार भी स्वीकार्यता के बावजूद वाजपेयी बहुमत के लिए जरूरी समर्थन नहीं जुटा सके थे। नतीजतन लोकसभा में विश्वासमत पर मतदान से पहले ही वे एक भावुक भाषण देकर राष्ट्रपति को इस्तीफा दे आये थे।

क्या गत 19 मई को बेंगलुरु में उसी घटनाक्रम की पुनरावृत्ति हुई? इस स्वाभाविक सवाल का जवाब इतना आसान नहीं। पहली नजर में समानता के बावजूद दोनों घटनाओं में अंतर है। तब कांग्रेस शासनकाल में राष्ट्रपति बने डॉ़ शंकर दयाल शर्मा ने संवैधानिक प्रावधानों और परंपराओं के अनुरूप सबसे बड़े दल के नेता के नाते वाजपेयी को सरकार गठन के लिए आमंत्रित किया था। जबकि हाल ही में कर्नाटक में, भाजपा शासनकाल में ही राज्यपाल बने वजुभाई वाला ने बहुमत के स्पष्ट आंकड़े के बावजूद कांग्रेस-जनता दल (एस) के दावे को दरकिनार करते हुए सबसे बड़े दल के नेता के रूप में भाजपा के बीएस येदियुरप्पा को न सिर्फ मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवा दी, बल्कि बहुमत साबित करने के लिए 15 दिन लंबा समय भी दे दिया। बेशक एक-दूसरे के विरुद्ध चुनाव लड़ने वाले कांग्रेस-जनता दल (एस) का यह चुनाव पश्चात गठबंधन सत्ता लोलुपता और अवसरवादिता का ही उदाहरण है, लेकिन राज्यपाल का काम नैतिकता के प्रमाणपत्र बांटना नहीं, बहुमत की संभावनाओं के मद्देनजर अपने विवेक से संविधान सम्मत फैसला करना है। राज्यपाल ने किस आधार पर कैसा फैसला किया, यह पहले सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप और फिर विश्वासमत से पहले ही येदियुरप्पा के इस्तीफे से साफ हो गया।

कर्नाटक की सत्ता से बेआबरू विदाई येदियुरप्पा से कहीं ज्यादा बड़ा झटका प्रधानमंत्री मोदी और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह की जोड़ी के लिए है। आखिर वर्ष 2014 में 8 राज्यों से शुरू कर 20 राज्यों में सत्ता का श्रेय भी तो स्टार प्रचारक मोदी और चाणक्य शाह को ही तो दिया जाता है। फिर नाकामी और अपयश भी उन्हीं के हिस्से आना चाहिए। 21 मई की प्रेस कानफ्रेंस में अमित शाह ने जिस तरह दावा किया कि कांग्रेस अपने विधायक होटल में बंद नहीं करती तो नतीजा कुछ और होता, उससे तो लगता है कि भाजपा ने बदनामी से भी जरूरी सबक नहीं सीखा है। बेशक हर राजनीतिक दल और नेता अब सत्ता के लिए ही राजनीति करता है। विचारधारा, नीति, कार्यक्रम तो बस दिखावे के दांत रह गये हैं, लेकिन अलग तरह की साफ-सुथरी राजनीतिक संस्कृति का वाहक होने का दम भरने वाली भाजपा कैसे ऐसे सत्ता के अनैतिक खेल को जायज ठहरा सकती है? जाहिर है, अपने कांग्रेसमुक्त अभियान के दुराग्रह में भाजपा सही-गलत का फर्क भूल चुकी है। टिप्पणी कड़वी लग सकती है, पर है सच कि इन चार सालों में भाजपा ने अपनी सत्ता का विस्तार तो तीन-चौथाई से भी ज्यादा देश में कर लिया है, पर अपनी पहचान और प्रतिबद्धता की महंगी कीमत चुका कर। बदनाम कांग्रेसियों को साथ लेकर भी कांग्रेस संस्कृति से देश को मुक्त कराने की यह स्वयंभू शैली मोदी-शाह की जोड़ी ही बेहतर समझ-समझा सकती है।

दरअसल 26 मई को पूरा हो रहा केंद्रीय सत्ता का यह चार साल का सफर अपनी प्रतिबद्धताओं के साथ ही जन आकांक्षाओं से भी भाजपा की बेवफाई की दास्तान भी है। कभी समान नागरिक संहिता, धारा 370 और राम मंदिर भाजपा की राजनीतिक प्रतिबद्धता की पहचान थे, जिन्हें सत्ता की खातिर पूरी तरह भुलाया जा चुका है। यहां सवाल इन मुद्दों के सही-गलत होने का नहीं, भाजपा की वैचारिक बेईमानी का है। नब्बे के दशक में सत्ता की दहलीज पर पहुंच भाजपा ने एक और नारा उछाला था- भय, भूख और भ्रष्टाचार से मुक्ति। इन आधुनिक राक्षसों में से किससे किसको मुक्ति मिली, जनता से बेहतर कौन जानता है। अब तो केंद्र समेत तीन-चौथाई देश में भाजपा और उसके मित्र दलों की ही सरकारें हैं। फिर भला क्यों कर्ज में डूबे किसान आत्महत्या कर रहे हैं? क्यों खाद्यान्न भंडार गृहों में सड़ रहा है और लोग भुखमरी से मर रहे हैं? क्यों भ्रष्टाचार की जोंक अभी भी आम आदमी का खून चूस रही है? नक्सल से आतंकवाद तक का नासूर तो मोदी सरकार को विरासत में मिला है, पर उसके अलावा भी घर-बाहर आम आदमी सुरक्षित नहीं है। खुद भाजपा विधायकों पर जब बलात्कार के आरोप लगें तो बेटी बचाओ जैसे नारे क्रूर मजाक ज्यादा लगते हैं। अब जरा वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों के वायदों-सपनों पर भी नजर डाल लें। वायदों-सपनों की फेहरिस्त बहुत लंबी बन सकती है, पर लब्बोलुआब यह था कि कांग्रेसनीत संप्रग शासन से आजिज आम आदमी को 'अच्छे दिन आयेंगे' का सपना दिखाया गया था। जाहिर है, उसमें भय, भूख, भ्रष्टाचार से मुक्ति का वायदा भी शामिल था, और विदेशों में जमा अकूत कालाधन लाकर हर नागरिक के बैंक खाते में 15 लाख रुपये जमा कराने का प्रलोभन भी, पर जो हुआ, वो सबके सामने है।

15 लाख खाते में जमा कराने को तो खुद अमित शाह ने चुनावी जुमला बता दिया, 100 दिनों में लाया जाने वाला विदेशों में जमा कालाधन चार साल बाद भी मृग मरीचिका ही बना हुआ है। महंगाई संप्रग की तरह राजग शासन में भी बेलगाम बनी हुई है तो पेट्रोल-डीजल के दामों ने तो उपभोक्ता का दम ही निकाल दिया है। नोटबंदी को हर मर्ज की दवा बताकर आम आदमी की तो आपातकालीन बचत भी निकलवा कर बैंकों में जमा करवा ली, पर बैंकों के हजारों-करोड़ रुपये लेकर चंपत हो गये विजय माल्या और नीरव मोदी सरीखे शातिर आज भी पहुंच से बहुत दूर हैं।

कानून के बावजूद संवेदनहीनता

यह कितनी विचित्र स्थिति है कि यौन उत्पीड़न से महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिये दिशा निर्देश देने और कानून बनाने के लिये सरकार को बाध्य करने वाले उच्चतम न्यायालय को 21 साल बाद सभी उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ अदालतों में इसके लिये समितियां गठित करने का निर्देश देना पड़ा है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने संबंधी कानून बनाने में जहां केन्द्र सरकार को 16 साल लगे वहीं अब 21 साल बाद शीर्ष अदालत को उच्च न्यायालय से इस कानून के अनुरूप समितियां बनाने के लिये कहना पड़ा।

अनूप भटनागर

यह समूची व्यवस्था की संवेदनशीलता और गंभीरता को उजागर करता है। दिल्ली की तीस हजारी अदालत परिसर में एक महिला वकील के साथ हुई कथित घटना के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं को संरक्षण कानून 2013 के अनुरूप दो महीने के भीतर इन समितियों का गठन करने के लिये कहा है। प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पीठ ने शीर्ष अदालत की रजिस्ट्री को निर्देश दिया है कि इस आदेश को उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रार जनरल को भेजा जाये। न्यायालय ने इस आदेश के अनुपालन के बारे में उच्च न्यायालयों से 15 जुलाई तक रिपोर्ट मांगी है।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं के संरक्षण और उनकी शिकायतों तथा समाधान के लिये उचित व्यवस्था नहीं होने का तथ्य भी तीस हजारी अदालत में एक महिला वकील के साथ हुई घटना के बाद सामने आया। इस महिला वकील ने अपने साथ हुई घटना के बारे में एक मजिस्ट्रेट के समक्ष बयान दर्ज कराया था और उस मजिस्ट्रेट ने पुलिस को इस मामले में प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश दिया था। इसी मुद्दे को लेकर तीस हजारी अदालत के वकीलों ने हड़ताल कर दी थी। उच्चतम न्यायालय ने विशाखा प्रकरण में 1997 में प्रतिपादित दिशा निर्देशों के अनुरूप नवंबर 2013 में अपने यहां कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं को संरक्षण के लिये दस सदस्यीय समिति गठित की थी। यह समिति शीर्ष अदालत के ही एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश अशोक कुमार गांगुली पर एक इंटर्न द्वारा यौन उत्पीड़न के आरोप लगाये जाने के बाद गठित की गयी थी।

विशाखा प्रकरण को राजस्थान में सामाजिक कार्यकर्ताओं और गैर सरकारी संगठनों ने उठाया था। शीर्ष अदालत ने अगस्त 1997 में इस प्रकरण में अपने फैसले में कहा था कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन है। इन अधिकारों में समता का अधिकार, कोई भी पेशा अपनाने का अधिकार और गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है। महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न या किसी प्रकार के भेदभाव की समस्या के निदान के लिये उपयुक्त कानून के अभाव में न्यायालय ने यौन उत्पीड़न की शिकायतों के निदान के लिये दिशानिर्देश बनाये थे, जिन्हें 'विशाखा दिशानिर्देश' के नाम से जाना जाता है।

न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं के संरक्षण के लिये विशेष समिति गठित करने का भी निर्देश दिया था ताकि ऐसी शिकायत मिलने पर एक आंतरिक व्यवस्था के तहत ही पहले चरण में समस्या का निदान किया जा सके। न्यायालय ने यह भी कहा था कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं को संरक्षण देने के लिये उचित कानून बनने तक यह व्यवस्था ही कानून के रूप में प्रभावी रहेगी। इसे महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों के प्रति व्यवस्था की उदासीनता कहा जाये कि 1997 के इस फैसले के आलोक में नया कानून बनाने में संसद और सरकार को 16 साल लग गये थे। तीस हजारी अदालत परिसर में महिला वकील से हाथापाई की कथित घटना सामने आने से पहले न्यायमूर्ति गांगुली का मामला भी सुर्खियों में रहा था। यही नहीं, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ बेंच में भी कुछ युवा महिला वकीलों ने न्यायालय परिसर में यौन उत्पीड़न की शिकायत के साथ याचिका दायर की थी। इस मामले में उच्च न्यायालय ने विशाखा प्रकरण के अनुरूप जांच समिति गठित की थी।

बच्चों में कान में ईयरबड डाली, तो हो सकता है ये नुकसान!

हेल्थ कॉर्नर

क्या आप भी अपने और अपने बच्चों के कान साफ करने के लिए ईयरबड का इस्तेमाल करते हैं? अगर हां, तो आपको तुरंत इसका इस्तेमाल करना छोड़ देना चाहिए। ये हम नहीं कह रहे बल्कि हालिया रिसर्च में ये बात सामने आई है।

क्या कहती है रिसर्च : 1990 से 2010 के बीच 263,000 से भी ज्यादा बच्चे यूएस के इमरजेंसी रूम में आए ईयर क्लीनिंग इंजरी के शिकार थे। यानि रोजाना 34 बच्चे यूएस में ईयर-क्लीनिंग इंजरी का शिकार होते हैं।

कैसे की गई रिसर्च : चिल्ड्रंस हॉस्पिटल के शोधकर्ताओं द्वारा पूरे देश में 100 हॉस्पिटल्स के इमरजेंसी डिपार्टमेंट के नेशनल इलेक्ट्रॉनिक इंजरी सर्विलेंस सिस्टम के आंकड़ों पर रिसर्च की गई। इस ईयर इंजरी में कॉटन स्वैब, कॉटन टिप्ड स्वैब और क्यू टिप्स का इस्तेमाल सबसे अधिक हुआ था।

रिसर्च के नतीजे : सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाली कॉटन-स्वैब ईयर इंजरी में ईयर ड्रम्स को रगड़ने के बाद कान से खून आना शामिल है। दूसरी बड़ी शिकायत आयरन मोंगरी डिजीज यानी कान में कुछ फंसा होना जैसा महसूस होना थी। दो साल के बच्चों में ये दो तरह की इंजरी सबसे ज्यादा देखी गई। तीन चौथाई इंजरी ईयर क्लीनिंग के दौरान हुई। बहुत से मामलों में बच्चों ने खुद को ही कान साफ करने के दौरान हर्ट किया। दरअसल, बच्चे खुद से कान साफ करने के दौरान घायल हो गए।

■ जीने का सलीका

विचार, साधना और कर्म मानव जीवन के प्रमुख रूप से तीन अंग हैं। इनके फलस्वरूप मनुष्य विचारक, साधक और कर्मठ कहा जाता है। साधना और कर्म में अंतर है। जीवन के समस्त व्यापार अच्छे और खराब कर्म को कहते हैं। जब मनुष्य कर्मधारा को विशेष सद्दिशा में दृढ़ता से मोड़कर उसमें एकाग्रचित्त रहकर ध्यान जमाता है तब वहां उसका साधक स्वरूप दिखाई देता है। साधना के क्षेत्र में मन का बड़ा महत्व है। इसके चलते विचरण करते मन को स्थिर करके ही साधना में रत हुआ जाता है। एक मनुष्य में ये तीनों स्वरूप मिल सकते हैं। कोई अधिक विचारक हो सकता है तो कोई अधिक साधक अथवा अधिक कर्मठ। अधिक विचारक को दार्शनिक भी कहा जाता है। शंकराचार्य का अद्वैत विचारवाला रूप विचारक या दार्शनिक का है। गोविंद भक्ति अथवा संन्यासरत स्वरूप साधक का है। पानी में डूबते समय माता से धर्मप्रचार की आज्ञा मांगने वाला रूप कर्मी या कर्मशील पुरुष का है। विनय पत्रिका में माया तथा मानस में नाम और राम का विवेचन करने वाले तुलसीदास जी विचारक या दार्शनिक हैं। बिंदुमाधव की छवि निहारने वाले, सत्संगनिरत और एकाग्रमन से विनयपत्रिका लिखने वाले तुलसीदास साधक स्वरूप हैं। दुखों से संघर्ष करने वाले, शैवों की उपेक्षा को हंसकर टालने वाले और मित्र टोडरमल के स्वर्गधाम गमन के उपरांत उनके पुत्रों को प्रबोध प्रदान करने वाले तुलसीदास कर्मठ स्वरूप ही हैं। मनुष्य की भांति राष्ट्र, साहित्य और धर्म के भी तीन स्वरूप होते हैं। प्रत्येक संप्रदाय, मत, जाति और समाज में ये तीनों अंग दर्शन, साधना तथा व्यवहार रूप में देखे जा सकते हैं। कोई मत या धर्म दर्शन-प्रधान हो जाता है तो कोई साधना या व्यवहार प्रधान।

■ पाठकों के पत्र

महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या

विधायिका में महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण देने के लिए विधेयक आए दो दशक गुजर गए, लेकिन उसके पारित होने की निकट भविष्य में भी कोई संभावना नजर नहीं आती। संभवतः इसी कारण राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने कहा है कि सियासी पार्टियां केवल बातें ही ना करें, बल्कि प्रतिबद्धता दिखाते हुए यह विधेयक पारित कराने के लिए आगे आएं। उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने कहा कि जब तक यह कानून बन नहीं जाता, राजनीतिक दलों को चुनावों के समय महिलाओं को ज्यादा टिकट देने की पहल स्वेच्छा से करनी चाहिए। क्या देश के दो सर्वोच्च पदाधिकारियों की ये बातें सुनी जाएंगी? ऐसा हो, तो आधी आबादी को सियासत में आधा हिस्सा देने की तरफ भारत भी आगे बढ़ता दिखेगा। वरना, फिलहाल तस्वीर निराशानजक है। अभी वैश्विक अनुपात की तुलना में भारत में महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या काफी कम है। 16वीं लोकसभा में 66 महिला सांसद जीतकर आईं, जो कुल सदस्य संख्या का 12.15 प्रतिशत है। 1952 में गठित पहली लोकसभा में सिर्फ 4.4 फीसदी महिला सांसद थीं। उससे तुलना करें तो संतोष हो सकता है, लेकिन यह तथ्य इस प्रगति की चमक फीकी कर देता है कि महिला सांसदों का वैश्विक औसत 22 प्रतिशत है। प्रत्यक्ष निर्वाचित सदन में महिला प्रतिनिधियों की उपस्थिति के लिहाज से तैयार 190 देशों की तैयार सूची में पिछले वर्ष भारत 103वें स्थान पर था। महिला विधायकों की कुल संख्या तो महज लगभग 9 फीसदी बैठती है।

-प्रतिमा वर्मा, कोटा

■ ज्ञान की परख

1. भारतीय वायुसेना प्रमुख कौन हैं?

2. गरीबों को गैस सिलेंडर देने वाली योजना कौन सी है?

3. छत्तीसगढ़ी भाषा में सबसे पहले कौन सी फिल्म बनी?

4. प्रदेश में संपत्तिकर में कितना इजाफा किया गया है?

5. हाईकोर्ट ने राज्य में हाथियों की सुरक्षा के लिए किस सेंटर को बनाने कहा है?

1. अरूप राहा 2. प्रधानमंत्री उज्जवला योजना 3. कहि देबे संदेस 4. पचास प्रतिशत 5. एलिफेंट रेस्क्यू सेंटर

■ जरा इनकी भी सुनिए

स्कूलों में स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक है। असली दिक्कत इनकी तैनाती की है। जो गड़बड़ है। ध्यान रहे कि कुशवाहा के पास स्कूली शिक्षा का ही प्रभार है।

-प्रकाश जावड़ेकर
केंद्रीय मंत्री

पांच साल तक किन शर्तो के साथ कर्नाटक में गठबंधन की सरकार चलेगी, यह अभी तय नहीं हुआ है। साथ ही किस पार्टी को किन विभागों की जिम्मेदारी मिलेगी, यह भी अभी तय नहीं हुआ है।

-जी. परमेश्वर
उप मुख्यमंत्री

ट्विट ट्विट

अंतरराष्ट्रीय सीमा पर लगातार निगरानी की जाए। खास तौर पर पाक के साथ लगती सीमा पर। ध्यान रहे कि पिछले नौ दिनों से की जा रही पाक सेना की फायरिंग में 11 लोग मारे जा चुके हैं, जबकि 60 घायल हुए हैं।

-राजनाथ सिंह

विकास का फल अब सबसे गरीब तबके तक पहुंचने लगा है। 26 मई को मोदी सरकार के चार साल पूरे होने जा रहे हैं।

-नरेंद्र मोदी